कभी-कभी दर्शन पर प्रवचन भी क्यों न करे, उसे परम धूर्त ही जानना चाहिए। उसके मिथ्या ज्ञान का कुछ भी मूल्य नहीं; श्रीभगवान् की मायाशक्ति ऐसे पापाचारी के ज्ञान की सम्पूर्ण गरिमा को हर लेती है। मिथ्याचारी का चित्त नित्य मलिन रहता है। अतएव उसका यौगिक-ध्यान का ढोंग कुछ भी महत्त्व नहीं रखता।

3/3

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।७।।

यः=जो; **तु**=परन्तु; **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियों को; **मनसा**=मनद्वारा; **नियम्य**=वश में करके; **आरभते**=आरम्भ करता है; **अर्जुन**=हे अर्जुन; **कर्मेन्द्रियैः**=कर्मेन्द्रियों से; **कर्मयोगम्**=भक्तियोग; **असक्तः**=अनासक्त; **सः**=वह; **विशिष्यते**=अति श्रेष्ठ है।

अनुवाद

दूसरी ओर, जो मनुष्य मन द्वारा इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों द्वारा भक्तिभावित कर्म करता है, वह अति श्रेष्ठ है।।७।।

तात्पर्य

लम्पट जीवन और इन्द्रियतृप्ति के उद्देश्य से ध्यानयोगी का मिथ्या वेष धारण करने के स्थान पर स्वधर्म का पालन करते हुए जीवन के लक्ष्य—भवबन्धन से छूट कर भगवद्धाम को प्राप्त करने के लिए साधन करना कहीं उत्तम है। श्रीविष्णु की प्राप्ति ही परम स्वार्थ-गति है। सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म का उद्देश्य जीवन के इस लक्ष्य की प्राप्ति में हमें सहायता प्रदान करना है। कृष्णभावनाभावित नियमित सेवा करने से गृहस्थी भी इस गति को प्राप्त हो सकता है। स्वरूप-साक्षात्कार के लिए शास्त्र के अनुसार संयमित जीवन यापन करते हुए अनासक्त भाव से स्वधर्माचरण करने पर परमार्थ सुलभ हो जाता है। अतएव जो पुरुष निष्कपट भाव से इस विधि का अनुगमन करता है, वह उस मिथ्याचारी से अति श्रेष्ठ है जो अबोध जनता को ठगने के उद्देश्य से कृत्रिम आध्यात्मिकता धारण किए रहता है। जीविका के लिए ध्यान लगाने वाले प्रवंचक ध्यानी से तो निश्छल झाड़ू लगाने वाला भी अच्छा है।

4/3

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।८।।

नियतम्=शास्त्र द्वारा नियत; **कुरु**=कर; **कर्म**=स्वधर्म रूप कर्तव्य को; **त्वम्**=तू; **कर्म**=कर्म करना; **ज्यायः**=श्रेष्ठ है; **हि**=निःसन्देह; **अकर्मणः**=कर्म न करने से; **शरीर**=शारीरिक; **यात्रा**=निर्वाह; **अपि**=भी; **च**=तथा; **ते**=तेरा; **न**=नहीं; **प्रसिद्ध्येत्**=सिद्ध होगा; **अकर्मणः**=कर्म न करने से।

अनुवाद

इसलिए तू स्वधर्म रूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तो तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।।८।।